

ग्रामीण परिप्रेक्ष्य में अध्यापक की निर्मिति

शचीन्द्र आर्य

यह लेख इस मान्यता पर आधारित प्रतीत होता है कि अध्यापक के रचना विन्यास या गढ़न की प्रक्रिया इस बात पर निर्भर करती है कि उसके इर्दगिर्द परिस्थितियाँ और परिवेश कैसा है और उसके चयन की प्रक्रिया और अवसर क्या रहे हैं? और क्या ये परिस्थितियाँ उसे वांछित अध्यापक बनाने में कोई सक्रिय भूमिका निभाती हैं?

शचीन्द्र अपने आलेख में एक निजी विद्यालय के अवलोकनों में अध्यापक के विद्यालय और विद्यार्थियों के साथ के सम्बन्धों को टटोलते हुए इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि ग्रामीण विद्यालय किसी भी तरह से परिवर्तनकारी भूमिका में नहीं है। और निर्मिति की प्रक्रिया में जो भी बिन्दु संघर्ष या विचलन के हो सकते हैं उन्हें भोथरा किया जा चुका है। इन सबके बीच विद्यार्थी के खुद के रचना विन्यास के बारे में सोचने के कई सवाल हैं। सं.

इस पर्व में ग्रामीण परिप्रेक्ष्य में अध्यापकों की निर्मिति पर कुछ बातों की गई हैं। यह उसी विद्यालय के अध्यापक हैं, जिसे मैंने अपने शोध के फ़ील्ड वर्क के लिए चुना था। मैं शोधार्थी के रूप में वहाँ लगभग सात माह रहा। चूँकि मेरा शोध 'शिक्षा और आधुनिकता की अन्तःक्रिया' पर केन्द्रित था, इसलिए मैंने कक्षा ग्यारह को अपने अवलोकन के लिए निश्चित किया। अध्यापक के अवकाश पर रहने या विद्यालय के अन्य कार्यों में संलग्न रहने पर मुझे जो अवसर मिलते थे, उस समय मैं विद्यार्थियों से चर्चा और संवाद स्थापित करता। इन सबके बीच अध्यापकों से भी अनौपचारिक वार्तालाप में अनेक विषयों पर बात होती रहती थी। यह लगातार चलने वाली सघन प्रक्रिया थी और जैसा कि मैंने पहले कहा प्रत्यक्ष रूप से यह शोध अध्यापकों पर नहीं है, लेकिन मुझे लगता है गाँव के उस निजी प्रबन्धन द्वारा संचालित विद्यालय में इतना लम्बा वक्त बिताने के दौरान सम्भवतः मेरे मन में भी यह प्रश्न उसी तरह बनने लगे जैसे किसी के

भी मन में यह सहज जिज्ञासा के रूप में आ सकते हैं कि वह विद्यालय, जो किसी ग्रामीण अंचल में स्थित है, वहाँ अध्यापक की भूमिका में कौन है? उनमें ऐसी कौन-सी विशेषताएँ हैं, जो उन्हें बाक़ी सब अध्यापकों से भिन्न बनाती हैं? सामाजिक परिवर्तन के उत्प्रेरक के रूप में वह अपना क्या योगदान दे रहे हैं? और अगर ऐसा है, तब उन्हें किस तरह की चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है? अगर वह अपनी सीमित-सी भूमिका में इसे सिर्फ़ जीविकोपार्जन का हिस्सा मानते हैं, तब क्या उनकी कक्षाओं में महज़ सामाजिक संरचनाओं का पुनरुत्पादन हो रहा है? फिर इन सबके साथ यह सवाल भी लगातार मेरे भीतर चलता रहा कि प्रबन्धन ने किस प्रक्रिया द्वारा उन्हें अध्यापक के रूप में चुना? क्या वह अध्यापक, अध्यापकों की भूमिका को किसी तरह का विस्तार देते हैं और हमारे सामने ऐसे निष्कर्षों तक पहुँचने में मदद कर सकते हैं कि हम नए सिरे से अध्यापकों पर सोचने के लिए बाध्य हो सकें? इन सवालों के

जवाब तभी मिल सकते हैं, जब हम यह देख सकें कि वह कक्षा के भीतर और बाहर किस तरह और कैसे अपनी भूमिका का निर्वहन कर रहे हैं।

इससे पहले कि यह चर्चा शुरू करें, प्रारम्भ में यह भी कह देना चाहता हूँ कि यहाँ ग्रामीण परिप्रेक्ष्य में काम कर रहे अध्यापकों के प्रति किसी भी तरह के सामान्यीकरण (जनरलाईजेशन) को स्थापित या पुष्ट करने की कोई मंशा नहीं है। यह सिर्फ़ उस एकमात्र निजी विद्यालय से प्राप्त आँकड़ों और अनुभवों पर आधारित चर्चा है, जो केवल अध्यापकों के बारे में बात करती है। किसी अन्य परिस्थिति में वह कैसे हो जाएँगे, ऐसा दावा कहीं नहीं किया गया है। अर्थात् वह किसी गाँव या ग्रामीण अंचल में केवल ऐसे ही होंगे, हम यह दावा नहीं करने जा रहे हैं।

विद्यालय का परिचय

विद्यालय ही वह प्रस्थान बिन्दु बन सकता है, जहाँ से हमें चर्चा शुरू करनी चाहिए। यह अध्यापक कहाँ अध्यापन कर रहे हैं, सबसे पहले यह जानना ज़रूरी है। इस विद्यालय को पहली से लेकर कक्षा बारह तक मान्यता प्राप्त है, जिसका संचालन निजी प्रबन्धन के हाथों में है। संचालक और प्रधानाचार्य ब्राह्मण हैं। उन्हें यह ज़मीन गाँव के ही एक प्रबुद्ध व्यक्ति ने विद्यालय खोलने के लिए दान में दी है। जब तक यह विद्यालय चल रहा है, ज़मीन पर किसी तरह से उनका कोई दावा नहीं रहेगा। इस अर्थ में विद्यालय खोलने में सबसे बड़ा संसाधन भूमि है और उस पर भी निवेश नहीं किया गया है।

विद्यालय में प्रतिवर्ष बसन्त पंचमी के दिन भण्डारा होता है। यह विद्यालय बगिया के बीचो-बीच स्थित है। एक बड़ा-सा लोहे का प्रवेश द्वार है। विद्यालय में दाखिल होते ही दाएँ हाथ की

तरफ़ प्रशासनिक खण्ड है, जिसका उद्घाटन क्षेत्र के विधायक ने किया था। इन दो कमरों में एक प्रधानाध्यापक / प्राचार्य का कमरा है तथा दूसरा कमरा कार्यालय और रिकॉर्ड रूम के रूप में इस्तेमाल किया जाता है। कार्यालय में दो या तीन लोहे की अलमारी होंगी। अर्ध-अवकाश में पुरुष अध्यापक भोजन करने के लिए भी इस कमरे का उपयोग करते हैं। इस खण्ड के बिल्कुल सामने एक घास का मैदान है। विद्यालय में कुल सोलह कमरे हैं जिनमें से दस कमरों की छत लोहे की चद्दर से अस्थाई तौर पर बनाई गई है, जिन्हें भविष्य में पक्का किए जाने की योजना है। इस विद्यालय में कोई पुस्तकालय नहीं है। हाई स्कूल के बाद छात्र-

छात्राएँ विज्ञान के विषयों की पढ़ाई कर सकते हैं लेकिन यहाँ प्रयोगशालाओं का भी अभाव है। प्रशासनिक खण्ड के दो कमरों को छोड़कर किसी भी कक्षा में पक्का फ़र्श नहीं है। मिट्टी को समतल कर कच्चा फ़र्श बनाया हुआ है। हर कक्षा में चार खिड़कियाँ हैं। दो, एक तरफ़ और दो, दूसरी तरफ़। एक श्यामपट्ट (ब्लैकबोर्ड) है। विद्यार्थियों के बैठने के लिए लोहे की बेंच हैं। एक बेंच पर तीन छात्र / छात्राएँ

आराम से बैठ सकते हैं। किसी भी कमरे में कोई पंखा नहीं है। खिड़कियों से आ रहे प्राकृतिक प्रकाश में ही अध्यापक पढ़ा रहे हैं और छात्र पढ़ रहे हैं। प्रकाश या बिजली की कोई वैकल्पिक व्यवस्था नहीं की गई है।

विद्यालय और अध्यापकों का सम्बन्ध

अब यहाँ प्रश्न आता है कि विद्यालय का निजी प्रबन्धन अपने यहाँ बतौर अध्यापक किन्हें चुनेगा? यह सवाल धुरी है, जिसके इर्दगिर्द बहुत-सी बातें स्पष्ट होंगी। एक तरफ़ सरकारी नौकरियाँ बहुत अधिक संख्या में शिक्षित वर्ग

विद्यालय ही वह प्रस्थान बिन्दु बन सकता है, जहाँ से हमें चर्चा शुरू करनी चाहिए। यह अध्यापक कहाँ अध्यापन कर रहे हैं, सबसे पहले यह जानना ज़रूरी है। इस विद्यालय को पहली से लेकर कक्षा बारह तक मान्यता प्राप्त है, जिसका संचालन निजी प्रबन्धन के हाथों में है।

को खपा नहीं पा रही हैं, वहीं यह भी देखने में आता है कि अप्रशिक्षित युवाओं की ऐसी भीड़ इन रोजगारविहीन वर्षों में इकट्ठी होती गई है, जहाँ निजी प्रबन्धन को अपने विद्यालय के लिए अध्यापक चुनने में कोई अतिरिक्त प्रयास नहीं करना पड़ता है।

यह विद्यालय भी इस स्थिति से बाहर नहीं है। इस विद्यालय के अधिकांश अध्यापक कई वर्षों से इससे जुड़े हुए हैं। अध्यापक सत्रह-अट्ठारह वर्षों से लगातार यहाँ काम कर रहे हैं। ऐसा नहीं है कि वेतनमान बहुत अधिक है। जैसा कि इस ज़िले में प्रचलित है अध्यापकों को डेढ़ सौ से लेकर दो सौ रुपया दिन दिया जाता है। जो अध्यापक विज्ञान, गणित या अँग्रेज़ी पढ़ाते हैं, उनका मासिक वेतन पैंतीस सौ से लेकर चार हजार रुपयों के बीच है, और जो अध्यापक प्राइमरी या प्राथमिक कक्षाओं को पढ़ाते हैं उन्हें पच्चीस सौ से लेकर अट्ठाईस सौ रुपयों में सन्तोष करना पड़ता है। अध्यापक मासिक वेतन पर काम करते हैं लेकिन प्रति माह वेतन न मिलने पर भी वह विद्यालय प्रबन्धन से इस विषय में अपना रोष या विद्रोह प्रकट नहीं करते हैं। इसकी क्या वजह हो सकती है यह समझना बहुत जटिल बात नहीं है।

अध्यापक इतने कम वेतन पर भी विद्यालय छोड़ कर नहीं जा रहे हैं, इसके दो कारण शोध अवलोकन के दौरान मेरे सामने स्पष्ट रूप से प्रकट हुए। सबसे बड़ा कारण तो यह है कि जो अध्यापक विद्यालय परिसर में विद्यार्थियों को ट्यूशन पढ़ाना चाहते हैं, वे यहाँ सुबह विद्यालय लगने से पहले और दोपहर में छुट्टी के बाद पढ़ा सकते हैं। इस रूप में प्रबन्धन तनख्वाह भले ही कम दे रहा हो पर विद्यालय परिसर में वह

ऐसी जगह का निर्माण कर रहा है, जहाँ उसके अध्यापक कम मिलने वाली तनख्वाह की भरपाई कर सकते हैं।

प्रबन्धन की यह सहमति सिर्फ़ जगह देने तक सीमित नहीं है। वह अपने अध्यापकों के लिए छात्र-छात्राओं के एक ऐसे समूह का निर्माण करता है कि वहाँ कुछ छात्र अगर कक्षा बारह के बाद विद्यालय से पास होकर चले भी जाएँगे तो उसी तर्ज पर कुछ छात्र विद्यालय में नए दाखिले के रूप में आएँगे भी तो। दूसरे शब्दों में कहें तो विद्यालय से अध्यापकों के लिए (ट्यूशन हेतु) छात्रों की अबाध पूर्ति भविष्य में भी होती रहेगी। उन्हें अपने लिए छात्रों को खोजने कहीं बाहर नहीं जाना पड़ेगा। वहीं विद्यार्थी यह मान कर सन्तोष कर लेते हैं कि अगर यही अध्यापक उनके घर पर आएँगे तब उन्हें (घर आने का) अतिरिक्त शुल्क देना होगा। जबकि विद्यालय में सुबह या दोपहर के बाद पढ़ने से वह इस अतिरिक्त शुल्क से बच सकते हैं और अध्यापकों से अपने सम्बन्ध भी मधुर कर सकते हैं, जिसका लाभ उन्हें किसी-न-किसी रूप में अवश्य मिलेगा।

जब निजी प्रबन्धन के विद्यालयों के अध्यापक प्रदेश की राजधानी में सरकार द्वारा मानदेय की अपनी माँग मनवाने के लिए हड़ताल का आयोजन करते हैं, तब इस विद्यालय के प्रधानाचार्य विद्यालय में अवकाश घोषित कर देते हैं और अध्यापकों को अगले दिन होने वाली हड़ताल में शामिल होने के लिए 'ऑर्डर बुक' में आदेश पारित करते हैं।

दूसरा कारण, विद्यालय प्रबन्धन भले ही कम तनख्वाह दे रहा हो लेकिन वह राज्य सरकार से निजी विद्यालयों के अध्यापकों के लिए 'मानदेय' की माँग पर उनके साथ खड़ा रहता है। जब निजी प्रबन्धन के विद्यालयों के अध्यापक प्रदेश की राजधानी में सरकार द्वारा मानदेय की अपनी माँग मनवाने के लिए हड़ताल का आयोजन करते हैं, तब इस विद्यालय के प्रधानाचार्य विद्यालय में अवकाश घोषित कर देते हैं और अध्यापकों को अगले दिन होने वाली हड़ताल में शामिल होने के लिए 'ऑर्डर

बुक' में आदेश पारित करते हैं। वह स्वयं अपने अध्यापकों की उपस्थिति को सुनिश्चित करने के लिए और उनकी माँगें मनवाने के लिए उनके साथ धरने पर बैठते हैं और विधानसभा के सामने विरोध प्रदर्शन का हिस्सा बनते हैं।

इसे थोड़ा ऐसे भी समझा जा सकता है कि विद्यालय प्रबन्धन शिक्षकों को अपनी तरफ से ढाई-तीन हजार रुपये से अधिक नहीं दे सकता लेकिन सरकार से की जा रही माँग पर वह उनके साथ है। वह सिर्फ़ इतने पर ही नहीं रुकता। वह अपने यहाँ कार्य कर रहे अध्यापकों को मुक्त विद्यालय से शिक्षक प्रशिक्षण भी दिलवा रहा है। भले यह उसके विद्यालय की मान्यता को बचाए रखने की एक युक्ति हो लेकिन वह उन्हें अध्यापन करते हुए इस 'डिप्लोमा' को करने का अवसर दे रहा है, यह विद्यालय से इतने कम वेतन पर भी जुड़े रहने की एक और बड़ी वजह है।

इसका दूसरा अर्थ यह हुआ कि चूँकि आप अप्रशिक्षित हैं इसलिए कम वेतन दिए जाने योग्य हैं। इतने पर भी आपको विद्यालय से निकाला नहीं जा रहा है क्योंकि आपकी अपने गाँव में इस विद्यालय के अध्यापक के रूप में साख है। इसी साख का उपयोग नए विद्यार्थियों को विद्यालय तक लाने में प्रबन्धन करना चाहता है। वह अपने अध्यापकों पर इस रूप में भी दबाव डालता है कि वह अपने यहाँ के बच्चों को उनके विद्यालय में दाखिला लेने के लिए प्रेरित करें।

इन सब मुद्दों के अलावा एक ऐसा मसला भी है, जो कभी सतह पर नज़र नहीं आएगा। यह

मार्च-अप्रैल में होने वाली बोर्ड परीक्षाओं के समय नज़र आता है। एक अध्यापक ने अनौपचारिक बातचीत में स्वीकार किया कि इन्हीं परीक्षाओं में वह जितना साल भर में 'ट्यूशन' से कमाते थे, उतना दस-बारह दिन में निकाल लिया करते थे। वह बताने लगे कि अगर इस बार कक्षाओं में 'सीसीटीवी कैमरे' नहीं लगे होते, तब वह अब तक साठ से सत्तर हजार रुपया कमा चुके होते। बात कुछ ज़्यादा बोल गए इसीलिए अपनी झंप को छिपाने की गरज़ से बोले, "अच्छा हुआ कैमरे लग गए। वरना परीक्षार्थी हमें अध्यापक थोड़े समझते थे।" लेकिन इस बात से पिछली बातें छिप नहीं पाईं।

अध्यापक और विद्यार्थियों के बीच सम्बन्ध

एक तरफ़ जहाँ हम यह देख रहे हैं कि विद्यालय का प्रबन्धन उनके साथ कैसा व्यवहार कर रहा है और दोनों के बीच आपसी सम्बन्ध कैसे हैं, हमारी रुचि यह जानने की भी है कि ऐसी स्थिति में क्या वह 'दब्बू तानाशाह'¹ जैसी किसी छवि को ओढ़ लेना चाहता है या वह उससे कहीं आगे निकल गया है और वह इस तरह

बिल्कुल एक नई संरचना है, जहाँ उसमें मूलभूत परिवर्तन आए हैं? वह पाओलो फ़ेरे (1996) द्वारा वर्णित अध्यापकों से किस तरह भिन्न है? हमें देखना होगा कि क्या वह उसी बैंकिंग अवधारणा से संचालित है या आलोचनात्मक चेतना का विकास करने में एक मददगार की भूमिका में है या फिर उसमें इन दो बिन्दुओं से भी अलग जाकर हम किन्हीं तत्त्वों को चिन्हित कर सकते हैं?

चूँकि आप अप्रशिक्षित हैं इसलिए कम वेतन दिए जाने योग्य हैं। इतने पर भी आपको विद्यालय से निकाला नहीं जा रहा है क्योंकि आपकी अपने गाँव में इस विद्यालय के अध्यापक के रूप में साख है। इसी साख का उपयोग नए विद्यार्थियों को विद्यालय तक लाने में प्रबन्धन करना चाहता है।

1. कृष्णकुमार अपनी पुस्तक *गुलामी की शिक्षा और राष्ट्रवाद* (2006) में इसका जिक्र करते हैं। जहाँ उनका तात्पर्य औपनिवेशिक सत्ता के आने के बाद अध्यापक की भूमिका में हुए परिवर्तन की तरफ़ संकेत करना है। जिसमें अध्यापक पहले की तरह किसी भी निर्णय को लेने के लिए स्वतंत्र नहीं रह गया था और निर्धारित पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तकों के अस्तित्व में आते ही वह नई भूमिका में था, जिसे वह 'दब्बू तानाशाह' कहकर इंगित करते हैं।

इस शोध के दौरान मुझे कैसा लगा, इस पर कुछ कहने की बजाय एक-दो उदाहरणों से छात्र और अध्यापक के बीच बनते-बिगड़ते सम्बन्धों को समझना चाहता हूँ, जिससे यह पता चल सके वे किस तरह के अध्यापकों में निर्मित हो रहे हैं।

उदाहरण- एक : दिन की ठण्डी सुबह है। कोहरा अभी भी सूरज को ढँके हुए है। तीसरी घण्टी बजी, तभी गणित के अध्यापक आते हैं और एक विद्यार्थी को अपने पास बुलाते हैं। वे उसे निर्देश दे रहे हैं कि वह अपने गाँव चला जाए और चूँकि अध्यापक सुबह दूध भी नहीं ले जा पाए थे, इसलिए दूध की डोलची को उनके घर पहुँचा दे और वापसी में उनके घर से दोपहर का भोजन टिफ़िन में लेता आए। वह विद्यार्थी अपनी पढ़ाई का हर्ज़ा करता हुआ उक्त अध्यापक से उनकी मोटर साइकिल की चाभी लेता है और कक्षा से बाहर चला जाता है। पीछे से अध्यापक उसे ध्यान से मोटर साइकिल चलाने की बात कह रहे हैं, जिसे वह सुन पाया या नहीं, कहा नहीं जा सकता।

उदाहरण- दो : ऐसी ही एक और सुबह है। पूरी कक्षा ठण्ड की वजह से मैदान में धूप में बैठी हुई है। अध्यापक के लिए कक्षा का एक विद्यार्थी कुर्सी ले आया है। वह अब उस पर बैठ गए हैं। छात्र एक तरफ़ और छात्राएँ दूसरी तरफ़ से घेर कर कुर्सी के इर्दगिर्द ज़मीन पर उकड़ूँ बैठे हुए हैं। इन्हीं में से दो-तीन छात्राएँ हिन्दी के अध्यापक, जो ब्राह्मण हैं, से चन्द्र ग्रहण के विषय में जानना चाहती हैं। जैसे ही छात्राएँ उनसे ग्रहण के बारे में पूछती हैं, वह कहते हैं— “पतरा देखेक पड़ी, पहिले बताय होइत्यु तो देख के आइत” (पत्रा/पंचांग देखना पड़ेगा। पहले बताती तो देख कर आता)। समय भले न पता चल पाया हो लेकिन

तभी गणित के अध्यापक आते हैं और एक विद्यार्थी को अपने पास बुलाते हैं। वे उसे निर्देश दे रहे हैं कि वह अपने गाँव चला जाए और चूँकि अध्यापक सुबह दूध भी नहीं ले जा पाए थे, इसलिए दूध की डोलची को उनके घर पहुँचा दे और वापसी में उनके घर से दोपहर का भोजन टिफ़िन में लेता आए।

अब वह छात्राएँ आपस में बात कर रही हैं कि जब तक ग्रहण रहेगा, तब तक भोजन नहीं किया जाना चाहिए। अध्यापक के रूप में वह शिक्षक भी उनकी बात में अपनी बात मिलाते हुए कहते हैं— “बिल्कुल सही। भोजन का त्याग कर देना चाहिए। नहीं करना चाहिए।”

उदाहरण- तीन : दोपहर आधी छुट्टी के बाद का समय रहा होगा। जीवविज्ञान के अध्यापक आज आए नहीं थे। बात बर्तनों पर चल रही थी। कैसे-कैसे बर्तन घरों में होते हैं। शादियों में पाँच तरह के बर्तन दहेज़ में दिए जाते हैं। मुसलमानों के यहाँ प्लास्टिक के बर्तन होते हैं। हम नहीं रखते। कोई बाहर से आ जाए तब? तब उन्हें अलग बर्तन में पानी और खाना देंगे। अपने बर्तनों में थोड़े देंगे। इन सारी बातों के बीच में जैसे ही प्रह्लाद सर की बात आई, एक छात्रा बोली— ‘उनको अपने बर्तन में पानी थोड़े देंगे सरजी। आप आओगे तो देंगे। उनको अपने बर्तन में कुछ नहीं देंगे। वह सूअर पालते हैं।’

उदाहरण- चार : वर्मा सर जी आए। वह इस कक्षा को अब नहीं पढ़ाते हैं। लेकिन कौन छात्र कैसा है इसकी खबर अभी भी उनके पास पहुँच जाती है। वह अपनी स्मृति के आधार पर दो लड़के और दो लड़कियों को नाम लेकर पुकारते हैं। अपना नाम सुनकर वह चारो खड़े हो जाते हैं। अब सरजी अपनी चार फ़ाइलें उनमें वितरित कर देते हैं। उन्हें हफ़्ता भर लगाकर चित्र सहित सब कुछ दूसरी पुस्तकों में से नक़ल करना है। यह वही ‘इन-सर्विस डीएलएड’ डिप्लोमा का काम है जो दस दिन बाद उन्हें तुलसीपुर में अपने स्टडी सेण्टर पर जमा करवाना है। वह चारो दी गई उत्तर पुस्तिका और किताब को देख रहे हैं। जितनी जल्दी हो सके यह काम खत्म करके

देना है।

प्रस्तुत चार प्रकरणों में हम यह भलीभाँति देख पा रहे हैं कि अध्यापक और विद्यार्थियों के बीच किस तरह का सम्बन्ध उभर रहा है। अध्यापक किसी चेतना का विस्तार कर पाएँगे, यह सवाल थोड़ी देर के लिए नज़रअन्दाज़ कर लें तो हम यह पाते हैं कि जन्म से निर्धारित जाति और उससे प्राप्त ज्ञान का मूल्य विद्यालय में पढ़ाई जाने वाली सामग्री से बहुत अधिक है। कक्षा ग्यारह की छात्राएँ विज्ञान से इण्टर की परीक्षा देंगी लेकिन जिस वैज्ञानिक चेतना का विस्तार विज्ञान के उपविषयों में अब तक कर लेना चाहिए था, वह अभी सुषुप्तावस्था में है। भविष्य में वह ऐसा कुछ कर भी पाएँगी, इसमें बराबर सन्देह बना हुआ है। हमें यह भी समझना होगा कि अध्यापक विद्यालय में अध्यापक हैं लेकिन जन्म से जो उनकी जाति है, वह दोनों के मध्य व्यवहार को कभी-न-कभी निर्धारित करने लग जाती है। बर्तनों के उपयोग और उनका किनके लिए निषेध है, यह किसी पाठ्यक्रम का हिस्सा नहीं है लेकिन छात्राओं के लिए वह उनकी जीवन शैली का हिस्सा है। इसी तरह अध्यापक विद्यार्थियों द्वारा अपना काम करवाने में किसी भी तरह झिझक नहीं रहे हैं।

ऐसे में एक पदानुक्रम साफ़-साफ़ उभरता हुआ दिखता है, जिसमें जैसा व्यवहार प्रबन्धन अध्यापकों के साथ करता है बिल्कुल वैसा ही अनुकरण अध्यापक अपने विद्यार्थियों के लिए करते हैं। वह अपनी लाचारियों को बिल्कुल भी अपने विद्यार्थियों पर जाहिर नहीं होने देना चाहते। फिर लोक में प्रचलित अध्यापक या उससे भी अधिक 'गुरु' की जो महत्ता है, उसका लाभ अध्यापक अपने पक्ष में कर रहे हैं।

विद्यालय में शौचालय नवनिर्मित कमरों के बाद बची हुई जगह में स्थित है। सामान्य दिनों में इसका उपयोग विद्यालय की छात्राओं द्वारा किया जाता है। विद्यालय के वरिष्ठ अध्यापक, जो विद्यालय के नियमित संचालन में प्रमुख भूमिका निभाते हैं, और जो पिछले बारह साल

से अध्यापन छोड़कर विद्यालय के कार्यालय को सँभाल रहे हैं, उनके कथनानुसार सिर्फ़ परीक्षा के दिनों में छात्रों को इसका उपयोग करने दिया जाता है। सामान्य दिनों में छात्र बाहर जाते हैं। बाहर का मतलब उनके लिए शौचालय की अवधारणा में उस बगिया के इर्दगिर्द उग आई छितरी हुई झाड़ियों और पेड़-पौधों की ओट में निपट आना बहुत सहज और सामान्य-सी बात है। जैसे ही आप उस लोहे के दरवाज़े पर पहुँचेंगे, एक दिशा निर्धारित है। यह दिशा एक तरह का बँटवारा है। बाईं तरफ़ छात्र जाएँगे। दाईं तरफ़ अध्यापक और अध्यापिकाएँ।

यह आश्चर्य का विषय है कि विद्यालय के अन्दर बने शौचालय का उपयोग न तो अध्यापक कर रहे हैं, न वहाँ कार्यरत अध्यापिकाएँ। अध्यापक तो जब भी मन किया तो गुटखा खाने और पेशाब करने आदि के लिए अकेले ही उस तरफ़ के झुरमुट में चले जाते हैं। लेकिन अध्यापिकाएँ कभी अकेले ऐसे जाते हुए नहीं दिखीं।

मुझे लगता है, इस रूप में यह शौचालय भी तो विद्यालय में काम करने वाले अध्यापक और अध्यापिकाओं का आत्मप्रत्यय निर्मित कर रहा होगा, जिसपर हमें अलग से ध्यान देने की ज़रूरत है।

व्यूरियस केस ऑफ़ सुनील वर्मा

यहाँ तक पहुँचते-पहुँचते, ग्रामीण परिप्रेक्ष्य में अध्यापक कैसे निर्मित होते हैं, उसकी कुछ-कुछ रूपरेखा आपको समझ में आ रही होगी। हम इस अन्तिम खण्ड में वहाँ कार्यरत एक अध्यापक के जीवन अनुभव को बारीकी से देखते हुए यह समझ पाएँगे कि वह कैसे अध्यापक की भूमिका में आते हैं। हमारे सामने प्रश्न यह भी है कि क्या वह सिर्फ़ अध्यापक बनना चाहते थे और वह अपने अध्यापकीय जीवन से सन्तुष्ट हैं? उनके लिए गाँव में रहकर पढ़ाना और कुछ बनने की इच्छा का क्या अर्थ है?

अध्यापक की उम्र लगभग तीस साल। विवाहित। दो बच्चे। एक पाँच साल का लड़का

यहीं गाँव में पढ़ता है। नौ साल पढ़ाने के बाद 'बीटीसी' करने की सोच रहे हैं। तीन-चार वर्ष पहले सरकारी बीटीसी संस्थान से इन्हें दाखिला लेने के लिए सम्पर्क किया गया था। इनका नाम बागपत के सरकारी 'डाइट' में आ गया था। घर में पिताजी ने कहा, 'क्या करोगे इतनी दूर जाकर। यहीं तुम्हारे लिए दवाखाना खुलवा देते हैं। वहीं बैठा करना।' दवाखाना खुला। वह अपना अध्यापन छोड़कर वहाँ बैठना भी शुरू कर चुके थे।

वह बताते हैं कि दवाखाना तो खैर क्या चलना था। वहाँ बैठे-बैठे पथरी की समस्या शुरू हो गई। गुर्दे में पथरी। इलाज हुआ और वह वापस विद्यालय जीवन में लौट आए। अब दोबारा 'बीटीसी' का खयाल दिमाग में आया है। अबकी बार संतोषी राम शिक्षा संस्थान, मल्हीपुर से ही बीटीसी कर लेंगे। कहीं बाहर नहीं जाएँगे। शादी के बाद तो और मुश्किल है। घर छूटता नहीं है। फिर बच्चे हो जाएँ तब तो और भी नहीं।

कहने लगे 'गाइडेंस' नहीं थी। फिर शादी के बाद मुश्किल हो जाता है सब। कुछ कर ही नहीं पाए। जबकि वह खुटेहना के स्कूल में पढ़ा चुके हैं। सेवाराम स्मारक, गिलौला में भी पढ़ाते थे। श्री मानस विद्यालय में भी पढ़ाया है। अब यहाँ दोबारा आ गए हैं। बीए में अँग्रेज़ी, कला और भूगोल पढ़े हैं। कला अध्यापक बनना था। नहीं बन पाए। फिर शिक्षाशास्त्र (एजुकेशन) में एमए कर लिया। अब 'एजुकेशन' में ही 'नेट' का पेपर पास कर लें तो 'पीएचडी' पर विचार बनाएँ। कहाँ से करेंगे समझ नहीं आ रहा, पर सोच रहे हैं नेट निकले तो करेंगे ज़रूर। पिछली बार गए थे नेट का पेपर देने। कम्प्यूटर पर था सबकुछ। समझ ही नहीं आया ज़्यादा और परिचित थे

नहीं उस तकनीक से। अब 'यू-ट्यूब' से नेट की तैयारी कर रहे हैं। बहुत सारी जानकारी तो वहाँ उपलब्ध है। कहने लगे, बाहर निकल जाओ तभी पढ़ाई सम्भव है। यहाँ घर पर रहते-रहते पढ़ नहीं पाते हैं। बताने लगे, खुटेहना में थे तब तीन बार 'मानदेय' आया था फिर सरकार बदल गई।

आज दो मार्च को जब वर्माजी हम दोनों के साथ धूप में बैठे हुए हैं, तब 'गोदाम अधीक्षक' की नौकरी का ज़िक्र आया। सुनील वर्मा के घूस देने से पहले कोई पचास हज़ार रुपया दे चुका था। जिन्हें पैसा दिया जाना था, वह कह रहे थे कि अगर वह इससे ज़्यादा पैसों का इन्तज़ाम कर पाएँ तो वह नौकरी उन्हें दिलवा सकते हैं। सुनीलजी बोले,

माता-पिता तय कर चुके होते हैं कि उन्हें अपने बच्चों के साथ क्या करना है। चार लड़के हैं, तो किससे पास रखना है? किससे खेती करवानी है? किससे पढ़ाना है? वह सब पहले ही तय कर चुके होते हैं। ऐसी स्थिति में उनका कोई सहयोग मिल ही नहीं पाता। पर हम मानते हैं, स्वतन्त्रता ही सबसे बड़ा सुख है। धन के साथ थोड़ी स्वतन्त्रता तो मिलनी ही चाहिए।

'सत्तर-अस्सी हज़ार या दोगुना दे देता तो काम हो जाता। लेकिन पैसा तो घर वाले ही देंगे।' उन्होंने इस बाबत अपने घर पर बात चलाई। घर वाले (उसमें भी मुख्य रूप से पिताजी) बोले, 'अब खाद्यान्न विभाग में जाकर क्या करोगे?' नहीं दिया पैसा। नहीं मिली नौकरी। कुछ होते हैं, जो विरोध कर देते हैं / विद्रोह कर देते हैं। पर हमने ऐसा कुछ नहीं किया। माता-पिता

तय कर चुके होते हैं कि उन्हें अपने बच्चों के साथ क्या करना है। चार लड़के हैं, तो किससे पास रखना है? किससे खेती करवानी है? किससे पढ़ाना है? वह सब पहले ही तय कर चुके होते हैं। ऐसी स्थिति में उनका कोई सहयोग मिल ही नहीं पाता। पर हम मानते हैं, स्वतंत्रता ही सबसे बड़ा सुख है। धन के साथ थोड़ी स्वतंत्रता तो मिलनी ही चाहिए।

सुनीलजी का यह प्रकरण हमारा ध्यान इस ओर ले जाता है, जहाँ हम देखते हैं कि शिक्षा प्राप्त व्यक्ति भी अपने निर्णयों को लेकर स्वतंत्र

नहीं है। परिवार नामक संस्था पुरुष को भी उसी तरह नियंत्रित करने की कोशिश करती है, जैसा हमें समाज में महिलाओं या स्त्रियों के विषय में देखने को मिलता है। पुरुष होने के बावजूद परिवार के सदस्य उसे गाँव से दूर पढ़ने के लिए नहीं भेजते हैं। दूसरी तरफ़ गाँव का पढ़ा-लिखा हताश शिक्षित युवा घूस या रिश्वत को एक मूल्य की तरह स्वीकार कर लेता है। लालफ़्रीताशाही में उसे नौकरी के लिए रिश्वत देने से भी गुरेज़ नहीं है। यह 'घूस' राज्य की नाकारा संस्थाओं में उत्पन्न हुआ नया आधुनिक मूल्य है, जिसे समाज में स्वीकार्यता मिल गई है।

और अन्त में...

जिन प्रश्नों को लेकर हम शुरू हुए थे, उनमें से कितनों को हम सुलझा पाए बात सिर्फ़ इतनी नहीं है। हम इन अनुभवों, प्रकरणों और उदाहरणों से वहाँ पहुँच गए हैं, जहाँ हम एक बात तय रूप तरीक़े से कह सकते हैं कि विद्यालय किसी भी तरह से परिवर्तनकारी भूमिका में नहीं है। वह जगह जो विद्यालय परिसर के भीतर निर्मित हो रही है, वह काण्ट (1997) के शब्दों में एक ऐसी जगह बन सकती थी, जहाँ हम अलग-अलग विषयों, मतभेदों और संघर्षों पर बात कर सकते थे। पर वह बन नहीं पाई। अध्यापकों की भूमिका

भी उसी सामाजिक ढाँचे को पोषित करती हुई लग रही है, जहाँ एक तरफ़ वह उस समाज से आते हैं जो रूढ़िग्रस्त है और दूसरी तरफ़ उन्हें उसी समाज में रह रहे अपने परिवार का पेट पालना है।

जो-जो बिन्दु संघर्ष या विचलन के हो सकते थे, उन्हें भोथरा किया जा चुका है। प्रबन्धन अध्यापकों को वेतन नहीं दे रहा लेकिन विद्यार्थियों के शोषण के लिए ट्यूशन के नाम पर अवसर दे रहा है। उन्हें शौचालय जैसी मूलभूत आवश्यकता से वंचित रखा गया है लेकिन किसी भी तरह का कोई स्वर हमें सुनाई नहीं देता। वह इसी में ख़ुश हैं कि कोई उन्हें आज भी अध्यापक के साथ-साथ ब्राह्मण मानकर तिथि-पंचांग की बात कर रहा है। उनसे ग्रहण पर सलाह ले रहा है।

जो जन्म से उच्च जाति में पैदा नहीं हुए उनके लिए विद्यालय प्रतीक्षा कक्ष की तरह है। वह भविष्य में किसी ऐसी जगह पहुँचना चाहते हैं, जिसकी तैयारी वह यहाँ इन दीवारों के बीच में बिना रोक-टोक कर सकते हैं।

इन सबके बीच विद्यार्थी किस तरह अपनी दुनिया को बना रहा है और वह किस तरह से इस बनाई हुई दुनिया को समझे, इसका कोई नक्शा किसी के पास अभी तक उपलब्ध नहीं है।

सन्दर्भ

पार्थ चटर्जी (1997), अवर मॉडर्निटी, South-South Exchange Programme for Research on the History of Development (SEPHIS), Rotterdam/Dakar,.

कृष्ण कुमार (2006), गुलामी की शिक्षा और राष्ट्रवाद, ग्रन्थ शिल्पी, दिल्ली.

पाओलो फ़ेरे (1996), उत्पीड़ितों का शिक्षाशास्त्र, ग्रन्थ शिल्पी, दिल्ली.

शचीन्द्र आर्य केन्द्रीय शिक्षा संस्थान, दिल्ली विश्वविद्यालय में शोधार्थी हैं।

सम्पर्क : shachinderarya@gmail.com